Chapter पन्द्रह

भगवान् कृष्ण द्वारा योग-सिद्धियों का वर्णन

इस अध्याय में आठ मुख्य तथा दस गौण योग-सिद्धियों का वर्णन हुआ है। योग में मन को स्थिर करके इन्हें प्राप्त किया जा सकता है किन्तु अन्ततोगत्वा ये विष्णु-धाम पहुँचने में बाधक बनती हैं।

उद्धव द्वारा पूछे जाने पर श्रीकृष्ण अठारह योग-सिद्धियों के लक्षणों का तथा जिस प्रकार के विशेष ध्यान से उन्हें प्राप्त किया जा सकता है, उनका वर्णन करते हैं। अन्त में कृष्ण यह कहते हैं कि जो व्यक्ति भगवान् की शुद्ध भक्ति करना चाहता है, उसके लिए इन योग-सिद्धियों की प्राप्ति समय का अपव्यय है क्योंकि ये उसे समुचित पूजा के मार्ग से विपथ करने वाली हैं। ये सारी सिद्धियाँ शुद्ध भक्त को स्वत: प्रदान की जाती हैं किन्तु वह इन्हें स्वीकार नहीं करता। जब तक भक्तियोग में इनका उपयोग न किया जाय, ये सिद्धियाँ व्यर्थ हैं। भक्त तो इतना ही देखता है कि भगवान् सदैव सर्वत्र अन्त: तथा बाह्य में विद्यमान हैं और वह उन्हीं पर पूरी तरह निर्भर रहता है।

श्रीभगवानुवाच
जितेन्द्रियस्य युक्तस्य जितश्वासस्य योगिन: ।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धय: ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; जित-इन्द्रियस्य—जिसने अपनी इन्द्रियाँ जीत ली हैं; युक्तस्य—जिसने मन को स्थिर कर लिया है; जित-श्वासस्य—जिसने प्राणायाम पर विजय पा ली है; योगिन:—ऐसे योगी का; मयि—मुझमें; धारयत:—स्थिर करते हुए; चेत:—अपनी चेतना; उपतिष्ठन्ति—प्रकट होती हैं; सिद्धय:—योग की सिद्धियाँ।

भगवान् ने कहा : हे उद्धव, योग-सिद्धियाँ उस योगी द्वारा अर्जित की जाती हैं जिसने अपनी इन्द्रियों पर विजय पा ली हो, अपने मन को स्थिर कर लिया हो, प्राणायाम को वश में कर लिया हो और जो अपने मन को मुझमें स्थिर कर चुका हो।

तात्पर्य : मूल योग-सिद्धियाँ आठ हैं—यथा अणिमा-सिद्धि आदि और दस गौण सिद्धियाँ हैं। इस अध्याय में भगवान् कृष्ण बतलायेंगे कि ऐसी योग-सिद्धियाँ कृष्णभावनामृत के विकास में बाधक हैं,

अतएव मनुष्य को चाहिए कि इनकी कामना न करे।

श्रीउद्धव उवाच
कया धारणया का स्वित्कथं वा सिद्धिरच्युत ।
कति वा सिद्धयो ब्रूहि योगिनां सिद्धिदो भवान् ॥ २ ॥

शब्दार्थ

श्री-उद्धवः उवाच—श्री उद्धव ने कहा; कया—किस; धारणया—ध्यान की विधि द्वारा; का स्वित्—क्या निस्सन्देह; कथम्—किस तरह से; वा—अथवा; सिद्धिः—योग-सिद्धि; अच्युत—हे प्रभु; कति—कितने; वा—अथवा; सिद्धयः—सिद्धियाँ; ब्रूहि—कृपा करके कहिए; योगिनाम्—समस्त योगियों के; सिद्धि-दः—सिद्धि दाता; भवान्—आप।

श्री उद्धव ने कहा : हे अच्युत, योग-सिद्धि किस विधि से प्राप्त की जा सकती है और ऐसी सिद्धि का स्वभाव क्या है? योग-सिद्धियाँ कितनी हैं? कृपा करके ये बातें मुझसे बतलाइये। निस्सन्देह, आप समस्त योग-सिद्धियों के प्रदाता हैं।

श्रीभगवानुवाच
सिद्धयोऽष्टादश प्रोक्ता धारणा योगपारगैः ।
तासामष्टौ मत्प्रधाना दशैव गुणहेतवः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; सिद्धयः—योग-सिद्धियाँ; अष्टादश—अठारह; प्रोक्ताः—घोषित की जाती हैं; धारणाः—ध्यान; योग—योग के; पार-गैः—पारंगतों द्वारा; तासाम्—उठारहों में से; अष्टौ—आठ; मत्-प्रधानाः—मुझमें शरण पाती हैं; दश—दस; एव—निस्सन्देह; गुण-हेतवः—भौतिक सतोगुण से प्रकट हैं।

भगवान् ने कहा : योग के पारंगतों ने घोषित किया है कि योग-सिद्धि तथा ध्यान के अठारह प्रकार हैं जिनमें से आठ मुख्य हैं, जो मेरे अधीन हैं और दस गौण हैं, जो सतोगुण से प्रकट होती हैं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने *मत्-प्रधानः* शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है। भगवान् कृष्ण आठ मुख्य योग-शक्तियों तथा ध्यानों (धारणाओं) के आश्रय हैं क्योंकि ऐसी सिद्धियाँ भगवान् की निजी शक्ति से उद्भूत हैं, फलस्वरूप ये स्वयं भगवान् तथा उनके निजी संगियों के भीतर ही ठीक से विकसित होती हैं। जब भौतिकतावादी व्यक्ति इन शक्तियों को यांत्रिक रूप से पा लेते हैं, तो जो सिद्धियाँ उन्हें दी जाती हैं, वे निम्न कोटि की होती हैं और वे माया की अभिव्यक्तियाँ मानी जाती हैं। शुद्ध भक्त तो भगवान् से स्वतः अद्भुत शक्तियाँ पाता है जिनसे वह भक्ति सम्पन्न करता है। यदि कोई व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के लिए योग-शक्तियाँ पाने हेतु यांत्रिक रूप से प्रयत्न करता है, तो ये

सिद्धियाँ निश्चित रूप से भगवान् की बहिरंगा शक्ति की निकृष्ट अंश मानी जाती हैं।

अणिमा महिमा मूर्तेर्लघिमा प्राप्तिरिन्द्रियैः ।
प्राकाम्यं श्रुतदृष्टेषु शक्तिप्रेरणमीशिता ॥ ४॥
गुणेष्वसङ्गो वशिता यत्कामस्तदवस्यति ।
एता मे सिद्धयः सौम्य अष्टावौत्पत्तिका मताः ॥ ५॥

शब्दार्थ

अणिमा—छोटे-से-छोटा बनने की सिद्धि; महिमा—बड़े-से-बड़ा बनना; मूर्तेः—शरीर का; लघिमा—हल्के-से-हल्का बनना; प्राप्तिः—प्राप्ति; इन्द्रियैः—इन्द्रियों के द्वारा; प्राकाम्यम्—इच्छानुरूप कार्य की सम्पन्नता; श्रुत—न दिखने वाली वस्तुएँ, जिनके बारे में केवल सुना जा सकता है; दृष्टेषु—तथा दिखाई पड़ने वाली वस्तुएँ; शक्ति-प्रेरणम्—माया की उपशक्तियों को काम में लगाना; ईशिता—नियंत्रण करने की सिद्धि; गुणेषु—प्रकृति के गुणों में; असङ्गः—बिना रुकावट के; वशिता—अन्यों को वश में करने की शक्ति; यत्—जो भी; कामः—इच्छा; तत्—वह; अवस्यति—प्राप्त कर सकता है; एताः—ये; मे—मेरी (शक्तियाँ); सिद्धयः—सिद्धियाँ; सौम्य—हे सुशील उद्धव; अष्टौ—आठ; औत्पत्तिकाः—प्राकृतिक तथा अद्वितीय; मताः—मानी जानी चाहिए।

आठ प्रधान योग-सिद्धियों में तीन सिद्धियाँ, जिनसे मनुष्य अपने शरीर को रूपान्तरित कर सकता है, अणिमा (छोटे से छोटा बनना), महिमा (बड़े से बड़ा होना) तथा लघिमा (हल्के से हल्का होना) हैं। प्राप्ति सिद्धि द्वारा मनवांछित वस्तु प्राप्त की जा सकती है और प्राकाम्य सिद्धि द्वारा मनुष्य को उसकी भोग्य वस्तु का अनुभव इस लोक या अगले लोक में होता है। ईशिता सिद्धि से मनुष्य माया की उपशक्तियों को पा सकता है और वशिता सिद्धि से मनुष्य तीनों गुणों से अबाध बन जाता है। जिसने कामावसायिता सिद्धि प्राप्त की होती है, वह कहीं से कोई भी वस्तु सर्वोच्च सीमा तक पा सकता है। हे उद्धव, ये आठ योग-सिद्धियाँ प्राकृतिक रूप से विद्यमान होती हैं और इस जगत में अद्वितीय हैं।

तात्पर्य : *अणिमा* सिद्धि के द्वारा मनुष्य इतना लघु बन सकता है कि वह पत्थर के भीतर घुस सकता है या किसी अवरोध से होकर निकल सकता है। *महिमा* सिद्धि से मनुष्य इतना बड़ा हो सकता है कि वह किसी भी वस्तु को ढक सकता है और *लघिमा* के द्वारा वह इतना हल्का हो सकता है कि सूर्य की किरणों पर चढ़ कर सूर्यलोक जा सकता है। *प्राप्ति* सिद्धि से मनुष्य कहीं से भी कुछ ला सकता है और अपनी उंगली से चाँद भी छू सकता है। इस सिद्धि से मनुष्य किसी अन्य जीव की इन्द्रियों के भीतर उस इन्द्रिय के प्रमुख अधिष्ठाता देवता के द्वारा प्रविष्ट हो सकता है और उसकी इन्द्रियों का उपयोग करके किसी भी चीज को प्राप्त कर सकता है। *प्राकाम्य* द्वारा किसी भी भोग्य वस्तु का

अनुभव इस जगत या अगले जगत में कर सकता है। *ईशिता* के द्वारा मनुष्य माया की उपशक्तियों को साध सकता है। दूसरे शब्दों में, योग-शक्तियाँ प्राप्त कर लेने पर भी मनुष्य माया के वश से निकल नहीं सकता, किन्तु वह माया की उपशक्तियों को साध सकता है। *वशिता* द्वारा मनुष्य अन्यों को अपने अधीन बना सकता है या अपने को तीन गुणों के नियंत्रण से बाहर रख सकता है। अन्ततः *कामावसायिता* के द्वारा मनुष्य नियंत्रण, प्राप्ति तथा भोग की अधिक से अधिक शक्तियाँ प्राप्त कर सकता है। *औत्पत्तिकाः* शब्द मूल, प्राकृतिक तथा अद्वितीय को बताने वाला है। ये आठों सिद्धियाँ मूलतः भगवान् कृष्ण में सर्वाधिक मात्रा में पाई जाती हैं। भगवान् कृष्ण इतने लघु बन जाते हैं कि वे परमाणु के भीतर प्रवेश कर जाते हैं और महाविष्णु रूप में इतने विशाल हो जाते हैं कि उनकी श्वास से करोड़ों ब्रह्माण्ड बाहर निकलते हैं। भगवान् इतने हल्के या सूक्ष्म बन सकते हैं कि बड़े-से-बड़े योगी भी उन्हें नहीं देख पाते। भगवान् की प्राप्ति शक्ति इतनी पूर्ण होती है कि वे पूरे ब्रह्माण्ड को अपने शरीर के भीतर रखे रहते हैं। भगवान् इच्छानुसार भोग कर सकते हैं, सारी शक्तियों को वश में कर सकते हैं, अन्य सारे व्यक्तियों पर शासन कर सकते हैं और पूर्ण शक्तिसम्पन्नता प्रदर्शित कर सकते हैं। इस तरह यह जाना जा सकता है कि ये आठों योग-सिद्धियाँ उन भगवान् की योगशक्ति के नगण्य अंश हैं, जिन्हें *भगवद्गीता* में *योगेश्वर* कहा गया है। ये आठों सिद्धियाँ कृत्रिम नहीं हैं अपितु स्वाभाविक हैं और अद्वितीय हैं क्योंकि ये मूलतः भगवान् में विद्यमान रहती हैं।

अनूर्मिमत्त्वं देहेऽस्मिन्दूरश्रवणदर्शनम् ।
मनोजवः कामरूपं परकायप्रवेशनम् ॥ ६ ॥
स्वच्छन्दमृत्युर्देवानां सहक्रीडानुदर्शनम् ।
यथासङ्कल्पसंसिद्धिराज्ञाप्रतिहता गतिः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अनूर्मि-मत्त्वम्—भूख, प्यास आदि से अविचलित रह कर.; देहे अस्मिन्—इस शरीर को; दूर—दूरस्थ वस्तुएँ; श्रवण—सुनना; दर्शनम्—तथा देखना; मनः-जवः—मन की गति से शरीर को हिलाते हुए; काम-रूपम्—इच्छानुसार किसी भी शरीर को धारण करते हुए; पर-काय—दूसरों के शरीर; प्रवेशनम्—प्रविष्ट होकर; स्व-छन्द—अपनी इच्छानुसार; मृत्युः—मर रहे; देवानाम्—देवताओं के; सह—साथ में; क्रीडा—खिलवाड़; अनुदर्शनम्—देखते हुए; यथा—के अनुसार; सङ्कल्प—दृढ़ निश्चय; संसिद्धिः—पूर्ण सिद्धि; आज्ञा—निर्देश; अप्रतिहता—अबाध; गतिः—प्रगति।

प्रकृति के गुणों से उत्पन्न होने वाली दस गौण योग-सिद्धियाँ हैं—भूख-प्यास तथा अन्य शारीरिक उत्पातों से अपने को मुक्त करने की शक्ति, काफी दूरी से वस्तुओं को देखने-सुनने की

शक्ति, मन के वेग से शरीर को गतिशील बनाने की शक्ति, इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति, अन्यों के शरीर में प्रवेश करने की शक्ति, इच्छानुसार शरीर त्यागने की शक्ति, देवताओं तथा अप्सराओं की लीलाओं का दर्शन करने की शक्ति, अपने संकल्प को पूरा करने तथा ऐसे आदेश देने की शक्ति जिनका निर्बाध पालन हो सके।

त्रिकालज्ञत्वमद्वन्द्वं परचित्ताद्यभिज्ञता ।
अग्न्यर्काम्बुविषादीनां प्रतिष्टम्भोऽपराजयः ॥ ८ ॥
एताश्चोद्देशतः प्रोक्ता योगधारणसिद्धयः ।
यया धारणया या स्याद्यथा वा स्यान्निबोध मे ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

त्रि-काल-ज्ञत्वम्—भूत, वर्तमान तथा भविष्य जानने की सिद्धि; अद्वन्द्वम्—गर्मी तथा सर्दी जैसे द्वैतों से अप्रभावित रहना; पर—अन्यों के; चित्त—मन; आदि—इत्यादि; अभिज्ञता—जानना; अग्नि—अग्नि; अर्क—सूर्य; अम्बु—जल; विष—विष; आदीनाम्—इत्यादि की; प्रतिष्टम्भः—शक्ति को रोकना; अपराजयः—दूसरे द्वारा हराया न जाना; एताः—ये; च—भी; उद्देशतः—नामों तथा गुणों के उल्लेख मात्र से; प्रोक्ताः—कथित; योग—योग-प्रणाली का; धारण—ध्यान की; सिद्धयः—सिद्धियाँ; यया—जिसमें; धारणया—ध्यान से; या—जो (सिद्धि); स्यात्—हो सके; यथा—जिसके द्वारा; वा—अथवा; स्यात्—हो सके; निबोध—सीख लो; मे—मुझसे।

भूत, वर्तमान तथा भविष्य जानने की शक्ति, शीत-घाम तथा अन्य द्वन्द्वों को सहने की शक्ति, अन्यों के मन को जान लेने, अग्नि, सूर्य, जल, विष इत्यादि के प्रभाव को रोकना तथा अन्यों द्वारा पराजित न होने की शक्ति—ये योग तथा ध्यान की पाँच सिद्धियाँ हैं। मैं उन्हें, उनके नामों तथा गुणों के अनुसार, यहाँ सूचीबद्ध कर रहा हूँ। तुम मुझसे सीख लो कि किस तरह विशेष ध्यान से विशिष्ट योग-सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं और उनमें कौन-सी विशेष विधियाँ निहित होती हैं।

तात्पर्य : आचार्यों के अनुसार ये पाँच सिद्धियाँ पूर्ववर्णित सिद्धियों की अपेक्षा अत्यन्त निम्न मानी जाती हैं क्योंकि इनमें सामान्य शारीरिक तथा मानसिक दाँव-पेंच निहित रहते हैं। मध्वाचार्य के अनुसार *अग्न्यर्काम्बुविषादीनाम् प्रतिष्टम्भः* नामक सिद्धि में *आदीनाम्* से सभी प्रकार के हथियारों से तथा नाखुन, दाँत, प्रताड़न, शाप इत्यादि के वारों से अप्रभावित रहना सूचित होता है।

भूतसूक्ष्मात्मनि मयि तन्मात्रं धारयेन्मनः ।
अणिमानमवाप्नोति तन्मात्रोपासको मम ॥ १० ॥

शब्दार्थ

भूत-सूक्ष्म—सूक्ष्म तत्त्वों के; आत्मनि—आत्मा में; मयि—मुझमें; तत्-मात्रम्—अनुभूति के सूक्ष्म तात्विक रूपों पर; धारयेत्—एकाग्र करे; मनः—मन को; अणिमानम्—अणिमा नामक सिद्धि; अवाप्नोति—प्राप्त करता है; तत्-मात्र—सूक्ष्म तत्त्वों में; उपासकः—पूजा करने वाला; मम—मेरा।

जो व्यक्ति अपने मन को समस्त सूक्ष्म तत्त्वों में व्याप्त मेरे सूक्ष्म रूप में एकाग्र करके मेरी पूजा करता है, वह अणिमा नामक योग-सिद्धि प्राप्त करता है।

तात्पर्य : अणिमा सूचक है अपने को छोटे-से-छोटा बनाने की शक्ति और किसी भी वस्तु के भीतर प्रवेश करने की सामर्थ्य का। भगवान् परमाणुओं तथा सूक्ष्म कणों के भीतर हैं और जो व्यक्ति भगवान् के उस सूक्ष्म रूप में अपने मन को ठीक से एकाग्र करता है, वह अणिमा नामक योगशक्ति प्राप्त करता है, जिससे मनुष्य पत्थर जैसे सघन पदार्थ के भीतर भी प्रवेश कर सकता है।

महत्तत्त्वात्मनि मयि यथासंस्थं मनो दधत् ।
महिमानमवाप्नोति भूतानां च पृथक्पृथक् ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

महत्-तत्त्व—समस्त भौतिक शक्ति की; आत्मनि—आत्मा में; मयि—मुझमें; यथा—के अनुसार; संस्थम्—विशेष परिस्थिति; मनः—मन; दधत्—एकाग्र करते हुए; महिमानम्—महिमा नामक शक्ति; अवाप्नोति—प्राप्त करता है; भूतानाम्—भौतिक तत्त्वों की; च—भी; पृथक् पृथक्—अलग अलग।

जो व्यक्ति महत् तत्त्व के विशेष रूप में अपने मन को लीन कर देता है और इस तरह समस्त जगत के परमात्मा रूप में मेरा ध्यान करता है उसे महिमा नामक योग-सिद्धि प्राप्त होती है। और जो आकाश, वायु, अग्नि इत्यादि पृथक् पृथक् तत्त्वों में अपने मन को लीन करता है, वह हर भौतिक तत्त्व की महानता (महत्ता) को प्राप्त करता जाता है।

तात्पर्य : वैदिक साहित्य में ऐसे असंख्य श्लोक हैं, जो यह बतलाते हैं कि भगवान् अपनी सृष्टि से गुणात्मक दृष्टि से अभिन्न हैं और इस तरह एक योगी सम्पूर्ण जगत को भगवान् की बहिरंगा शक्ति के प्राकट्य रूप में ध्यान कर सकता है। जब योगी को यह अनुभूति हो जाती है कि यह सृष्टि भगवान् से अभिन्न है, तो उसे *महिमा सिद्धि* प्राप्त होती है। हर तत्त्व में भगवान् की उपस्थिति का अनुभव करते हुए योगी प्रत्येक तत्त्व की महानता (*महत्ता*) भी प्राप्त कर लेता है। किन्तु शुद्ध भक्तजन ऐसी सिद्धियों में रुचि नहीं लेते क्योंकि वे लोग उन भगवान् के शरणागत होते हैं, जो इन सिद्धियों का अनन्त मात्रा तक प्रदर्शन करते हैं। भगवान् द्वारा सदैव सुरक्षित होने से शुद्ध भक्त अपना अमूल्य समय बचाकर उसे

हरे कृष्ण मंत्र का कीर्तन करने में लगाते हैं। इस तरह वे अपने लिए तथा अन्यों के लिए *संसिद्धि* अर्थात् शुद्ध भगवत्प्रेम या कृष्णभावनामृत प्राप्त करते हैं जिससे मनुष्य समस्त भौतिक सृष्टि से परे वैकुण्ठ-लोक तक अपने जीवन का विस्तार कर सकता है।

परमाणुमये चित्तं भूतानां मयि रञ्जयन् ।
कालसूक्ष्मार्थतां योगी लघिमानमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

परम-अणु-मये—परमाणुओं के रूप में; चित्तम्—चेतना; भूतानाम्—भौतिक तत्त्वों की; मयि—मुझमें; रञ्जयन्—अनुरक्त होकर; काल—समय का; सूक्ष्म—सूक्ष्म; अर्थताम्—वस्तु; योगी—योगी; लघिमानम्—लघिमा नामक योगशक्ति; अवाप्नुयात्—प्राप्त कर सकते हैं।

मैं प्रत्येक वस्तु के भीतर रहता हूँ, इसलिए मैं भौतिक तत्त्वों के परमाणविक घटकों का सार हूँ। मेरे इस रूप में अपने मन को संलग्न करके, योगी लघिमा नामक सिद्धि प्राप्त कर सकता है, जिससे वह काल के समान सूक्ष्म परमाणविक वस्तु की अनुभूति कर सकता है।

तात्पर्य : *श्रीमद्भागवत* में *काल* की विशद व्याख्या मिलती है, जिसके अनुसार काल भगवान् का वह दिव्य रूप, जो भौतिक जगत को गतिशील बनाता है। चूँकि पाँचों स्थूल तत्त्व परमाणुओं से बने हैं, अतएव परमाणविक कण सूक्ष्म वस्तु अथवा काल की गति की अभिव्यक्ति हैं। काल से भी सूक्ष्म भगवान् हैं, जो अपनी शक्ति को काल रूप में विस्तार देते हैं। इन बातों को ठीक से समझ लेने पर, योगी को *लघिमा* सिद्धि प्राप्त होती है, जिससे वह अपने को हल्के से हल्का बना सकता है।

धारयन्मय्यहंतत्त्वे मनो वैकारिकेऽखिलम् ।
सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं प्राप्तिं प्राप्नोति मन्मनाः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

धारयन्—एकाग्र करते हुए; मयि—मुझमें; अहम्-तत्त्वे—मिथ्या अहंकार के भीतर; मनः—मन; वैकारिके—सतोगुण से उत्पन्न हुए में; अखिलम्—पूर्णतया; सर्व—सारे जीव; इन्द्रियाणाम्—इन्द्रियों का; आत्मत्वम्—स्वामित्व; प्राप्तिम्—प्राप्ति नामक सिद्धि; प्राप्नोति—प्राप्त करता है; मत्-मनाः—योगी जिसका मन मुझमें स्थिर है।

सतोगुण से उत्पन्न मिथ्या अहंकार के भीतर अपने मन को पूरी तरह मुझमें एकाग्र करते हुए योगी प्राप्ति नामक शक्ति प्राप्त करता है, जिससे वह समस्त जीवों की इन्द्रियों का स्वामी बन जाता है। वह ऐसी सिद्धि इसलिए प्राप्त करता है क्योंकि उसका मन मुझमें लीन रहता है।

तात्पर्य : यह महत्त्वपूर्ण बात है कि प्रत्येक योगशक्ति को पाने के लिए मनुष्य को अपना मन

भगवान् पर स्थिर करना होता है। श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर कहते हैं कि जो लोग अपना मन भगवान् पर स्थिर किये बिना ऐसी सिद्धियों के पीछे पड़े रहते हैं, वे प्रत्येक योगशक्ति के स्थूल तथा निम्न कोटि के प्रतिबिम्ब को ही प्राप्त करते हैं। जो भगवान् के प्रति सचेत नहीं होते, वे विश्व के कार्यों से अपने मन का तालमेल नहीं बैठा पाते अतएव वे अपने यौगिक ऐश्वर्य को विश्व-स्तर तक उठा नहीं पाते।

महत्यात्मनि यः सूत्रे धारयेन्मयि मानसम् ।
प्राकाम्यं पारमेष्ठ्यं मे विन्दतेऽव्यक्तजन्मनः ॥ १४॥

शब्दार्थ

महति—महत्-तत्त्व में; आत्मनि—परमात्मा में; यः—जो; सूत्रे—सकाम कर्मों की शृंखला से जाना जाने वाला; धारयेत्—एकाग्र करे; मयि—मुझमें; मानसम्—मानसिक कार्य; प्राकाम्यम्—प्राकाम्य नामक सिद्धि; पारमेष्ठ्यम्—सर्वोत्तम; मे—मुझसे; विन्दते—प्राप्त करता है या भोगता है; अव्यक्त-जन्मनः—उससे जिसके प्राकट्य को इस जगत में अनुभव नहीं किया जा सकता।

जो व्यक्ति सकाम कर्मों की शृंखला को अभिव्यक्त करने वाले महत् तत्त्व की उस अवस्था के परमात्मा रूप मुझमें अपनी सारी मानसिक क्रियाएँ एकाग्र करता है, वह अव्यक्त रूप मुझसे प्राकाम्य नामक सर्वोत्तम योग-सिद्धि प्राप्त करता है।

तात्पर्य : श्रील वीरराघव आचार्य बतलाते हैं कि *सूत्र* शब्द यह सूचित करने के लिए प्रयुक्त हुआ है कि महत् तत्त्व मनुष्य के सकाम कर्मों को उसी तरह धारण करता है, जिस प्रकार डोरा रत्नों को बाँधे रखता है। इस तरह महत् तत्त्व की आत्मा रूप भगवान् में स्थिर ध्यान से, मनुष्य *प्राकाम्य* नामक सर्वोत्कृष्ट सिद्धि पा सकता है। *अव्यक्त-जन्मनः* सूचित करता है कि भगवान् अव्यक्त या आध्यात्मिक आकाश से प्रकट होते हैं अथवा उनका जन्म *अव्यक्त* है। जब तक कोई भगवान् के दिव्य रूप को स्वीकार नहीं कर लेता, तब तक *प्राकाम्य* या कोई अन्य सिद्धि प्राप्त करने की सम्भावना नहीं रहती।

विष्णौ त्र्यधीश्वरे चित्तं धारयेत्कालविग्रहे ।
स ईशित्वमवाप्नोति क्षेत्रज्ञक्षेत्रचोदनाम् ॥ १५॥

शब्दार्थ

विष्णौ—भगवान् विष्णु या परमात्मा में; त्रि-अधीश्वरे—तीन गुणों वाली माया के परम नियन्ता; चित्तम्—चेतना; धारयेत्—एकाग्र करता है; काल—काल का, जो कि मूल गतिप्रदाता है; विग्रहे—स्वरूप में; सः—वह, योगी; ईशित्वम्—वश में करने की सिद्धि; अवाप्नोति—प्राप्त करता है; क्षेत्र-ज्ञ—चेतन जीव; क्षेत्र—उपाधियों सहित शरीर; चोदनाम्—प्रेरित करते हुए।

जो मूल गतिप्रदाता तथा तीन गुणों से युक्त बहिरंगा शक्ति के परमेश्वर, परमात्मा विष्णु में

अपनी चेतना स्थिर करता है, वह अन्य बद्धजीवों, उनके शरीरों तथा उनकी उपाधियों को नियंत्रित करने की योग-सिद्धि प्राप्त करता है।

तात्पर्य : हमें स्मरण रखना चाहिए कि कोई योग-सिद्धि जीव को कभी भी इतना समर्थ नहीं बनाती कि वह भगवान् की श्रेष्ठता को चुनौती दे सके। वस्तुत:, हम भगवान् की कृपा के बिना ऐसी सिद्धियाँ प्राप्त नहीं कर सकते। इस तरह मनुष्य की नियंत्रणकारी शक्ति कभी भी भगवान् कृष्ण की योजना में बाधक नहीं बन सकती। मनुष्य को ईश्वर के नियम के अन्तर्गत ही योग-नियंत्रण प्रदर्शित करने की अनुमति दी जाती है और बड़े-से-बड़े योगी को भी जो अपने तथाकथित योग-ऐश्वर्य से ईश्वर के नियम का उल्लंघन करता है, उसी तरह कठोर दण्ड दिया जाता है जैसाकि अम्बरीष महाराज को शाप देने पर दुर्वासा मुनि की कथा से पता चलता है।

नारायणे तुरीयाख्ये भगवच्छब्दशब्दिते ।
मनो मय्यादधद्योगी मद्धर्मा वशितामियात् ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

नारायणे—भगवान् नारायण में; तुरीय-आख्ये—तुरीय नामक; भगवत्—समस्त ऐश्वर्य से पूर्ण; शब्द-शब्दिते—शब्द से जाना जाने वाला; मन:—मन; मयि—मुझमें; आदधत्—लगाते हुए; योगी—योगी; मत्-धर्मा—मेरे स्वभावको पाकर; वशिताम्—वशिता नामक सिद्धि; इयात्-मय् ओब्तैन्.

जो योगी मेरे नारायण रूप में, जो कि समस्त ऐश्वर्यपूर्ण चौथी अवस्था (तुरीय) माना जाता है, अपने मन को लगाता है, वह मेरे स्वभाव से युक्त हो जाता है और उसे वशिता नामक योग-सिद्धि प्राप्त होती है।

तात्पर्य : *भगवद्गीता* (७.१३) में भगवान् कृष्ण ने कहा है—

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभि: सर्वमिदं जगत्।

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्य: परमव्ययम्॥

"तीन गुणों (सतो, रजो तथा तमो) के द्वारा मोहग्रस्त यह सारा संसार मुझ गुणातीत तथा अविनाशी को नहीं जानता।" इस तरह भगवान् *तुरीय* कहलाते हैं अर्थात् वे तीनों गुणों से परे एक चतुर्थ कारक हैं। श्रील वीरराघव आचार्य के अनुसार *तुरीय* शब्द यह भी सूचति करता है कि भगवान् चेतना की तीन सामान्य अवस्थाओं—जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्त से परे हैं। *भगवच्छब्द-शब्दिते* सूचित करता है कि भगवान् असीम ऐश्वर्य—सौन्दर्य, यश, धन, ज्ञान, वैराग्य तथा बुद्धि के स्वामी हैं।

अन्त में, मनुष्य भगवान् का, *तुरीय* रूप में, ध्यान करके योग-ऐश्वर्य *वशिता* को प्राप्त कर सकता है। हर बात भगवान् की कृपा पर निर्भर करती है।

निर्गुणे ब्रह्मणि मयि धारयन्विशदं मनः ।
परमानन्दमाप्नोति यत्र कामोऽवसीयते ॥ १७॥

शब्दार्थ

निर्गुणे—गुणरहित; ब्रह्मणि—ब्रह्म में; मयि—मुझमें; धारयन्—एकाग्र करके; विशदम्—शुद्ध; मनः—मन; परम-आनन्दम्—सर्वाधिक सुख; आप्नोति—प्राप्त करता है; यत्र—जहाँ; कामः—इच्छा; अवसीयते—पूर्णतया पूरित रहता है।

जो व्यक्ति मेरे निर्विशेष ब्रह्म रूप में अपना शुद्ध मन स्थिर करता है, वह सर्वाधिक सुख प्राप्त करता है, जिसमें उसकी सारी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं।

तात्पर्य : *परमानन्द* सर्वाधिक भौतिक सुख का सूचक है क्योंकि *श्रीमद्भागवत* में स्पष्ट: कहा गया है कि भक्त की कोई निजी इच्छा या *काम* नहीं होता। जो सकाम होता है, वह निश्चय ही भौतिक संसार के भीतर है और भौतिक स्तर पर सर्वाधिक सुख *कामाव सायिता-सिद्धि* कहलाता है।

श्वेतद्वीपपतौ चित्तं शुद्धे धर्ममये मयि ।
धारयञ्छ्वेततां याति षड्ऊर्मिरहितो नरः ॥ १८॥

शब्दार्थ

श्वेत-द्वीप—श्वेत द्वीप का, जो कि क्षीरोदकशायी विष्णु का धाम है; पतौ—भगवान् में; चित्तम्—चेतना को; शुद्धे—साक्षात् सतोगुण में; धर्म-मये—दया में सदैव स्थित है, जो; मयि—मुझमें; धारयन्—एकाग्र करते हुए; श्वेतताम्—शुद्धता को; याति—प्राप्त करता है; षट्-ऊर्मि—भौतिक उत्पात की छः लहरें; रहितः—से मुक्त; नरः—पुरुष।

जो व्यक्ति मेरे धर्म को धारण करने वाले, साक्षात् शुद्धता तथा श्वेत द्वीप के स्वामी के रूप मुझमें, अपना मन एकाग्र करता है, वह शुद्ध जीवन को प्राप्त करता है, जिसमें वह भौतिक उपद्रव की छह ऊर्मियों से अर्थात् भूख, प्यास, क्षय, मृत्यु, शोक तथा मोह से—मुक्त हो जाता है।

तात्पर्य : अब भगवान् प्रकृति के गुणों से उत्पन्न दस गौण योग-सिद्धियाँ प्राप्त करने की विधियाँ बतलाते हैं। भौतिक जगत के भीतर *श्वेतद्वीप पति* भगवान् विष्णु सतोगुण पर शासन चलाते हैं और इस तरह वे *शुद्ध* तथा *धर्ममय* कहलाते हैं। भौतिक शुद्धि के साक्षात् रूप भगवान् विष्णु की पूजा करने से मनुष्य को शारीरिक उपद्रवों से मुक्त होने का वर प्राप्त होता है।

मय्याकाशात्मनि प्राणे मनसा घोषमुद्वहन् ।
तत्रोपलब्धा भूतानां हंसो वाचः शृणोत्यसौ ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

मयि—मुझमें; आकाश-आत्मनि—आकाश रूप; प्राणे—प्राण में; मनसा—मन से; घोषम्—दिव्य ध्वनि; उद्वहन्—एकाग्र करते हुए; तत्र—आकाश में; उपलब्धाः—अनुभूत; भूतानाम्—सारे जीवों का; हंसः—शुद्ध जीव; वाचः—शब्द या वाणी; शृणोति—सुनता है; असौ—वह।

वह शुद्ध जीव जो मेरे भीतर होने वाली असामान्य ध्वनि पर साक्षात् आकाश तथा प्राण-वायु के रूप में अपना मन स्थिर करता है, वह आकाश में सारे जीवों की वाणी का अनुभव कर सकता है।

तात्पर्य : आकाश के भीतर वायु के स्पन्दन से वाणी उत्पन्न होती है। जो व्यक्ति भगवान् का ध्यान साक्षात् आकाश तथा वायु के रूप में करता है उससे वह काफी दूरी पर होने वाली ध्वनि को सुनने की शक्ति प्राप्त कर सकता है। *प्राण* शब्द सूचित करता है कि भगवान् जीवों के और समस्त प्राणियों के साक्षात् प्राण हैं। अन्ततोगत्वा शुद्ध भक्तगण परम ध्वनि—हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे/हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे—का ध्यान करते हैं और इस तरह वे इस ब्रह्माण्ड के परे दूरस्थ मुक्त जीवों से उत्पन्न वाणी को सुन सकते हैं। कोई भी जीव *श्रीमद्भागवत, भगवद्गीता* तथा अन्य ऐसे ही ग्रंथों को पढ़ कर ऐसी विवेचनाएँ सुन सकता है। जिस व्यक्ति ने भगवान् के ऐश्वर्यों को ठीक से समझ लिया है, वह कृष्णभावनामृत में सारी सिद्धियाँ पा लेता है।

चक्षुस्त्वष्टरि संयोज्य त्वष्टारमपि चक्षुषि ।
मां तत्र मनसा ध्यायन् विश्वं पश्यति दूरतः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

चक्षुः—आँखें; त्वष्टरि—सूर्य में; संयोज्य—तादात्म्य करके; त्वष्टारम्—सूर्य को; अपि—भी; चक्षुषि—अपनी आँखों में; माम्—मुझको; तत्र—वहाँ, सूर्य तथा आँख के पारस्परिक तादात्म्य में; मनसा—मन से; ध्यायन्—ध्यान करते हुए; विश्वम्—हर वस्तु को; पश्यति—देखता है; दूरतः—दूर स्थित।

मनुष्य को चाहिए कि अपनी दृष्टि को सूर्यलोक में और सूर्यलोक को अपनी आँखों में लीन करके, सूर्य तथा दृष्टि के संमेल के भीतर मुझे स्थित मान कर, मेरा ध्यान करे। इस तरह वह किसी भी दूर की वस्तु को देखने की शक्ति प्राप्त कर लेता है।

मनो मयि सुसंयोज्य देहं तदनुवायुना ।
मद्धारणानुभावेन तत्रात्मा यत्र वै मनः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

मनः—मन; मयि—मुझमें; सु-संयोज्य—ठीक से संयुक्त करके; देहम्—भौतिक शरीर; तत्—मन; अनु-वायुना—पीछे पीछे चलने वाली हवा से; मत्-धारणा—मेरे ध्यान का; अनुभावेन—शक्ति द्वारा; तत्र—वहाँ; आत्मा—भौतिक शरीर (चला जाता है); यत्र—जहाँ जहाँ; वै—निश्चय ही; मनः—मन (चला जाता है)।

जो योगी अपना मन मुझमें लीन कर देता है और इसके बाद मन का अनुसरण करने वाली वायु का उपयोग भौतिक शरीर को मुझमें लीन करने के लिए करता है, वह मेरे ध्यान की शक्ति से उस योग-सिद्धि को प्राप्त करता है, जिससे उसका शरीर तुरन्त ही मन के पीछे पीछे जाता है।

तात्पर्य : *तद्-अनुवायुना* उस विशेष सूक्ष्म वायु का सूचक है, जो मन के पीछे पीछे जाती है। जब योगी इस वायु को शरीर तथा मन के साथ साथ भगवान् के ध्यान की शक्ति से कृष्ण में मिला देता है, तो उसका स्थूल शरीर सूक्ष्म वायु की ही तरह मन के पीछे पीछे कहीं भी जा सकता है। यह सिद्धि *मनोजवः* कहलाती है।

यदा मन उपादाय यद्यद्रूपं बुभूषति ।
तत्तद्भवेन्मनोरूपं मद्योगबलमाश्रयः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

यदा—जब; मनः—मन; उपादाय—प्रयुक्त करके; यत् यत्—जो जो; रूपम्—रूप; बुभूषति—धारण करना चाहता है; तत् तत्—वही रूप; भवेत्—प्रकट हो सकता है; मनः-रूपम्—मन द्वारा इच्छित रूप; मत्-योग-बलम्—मेरी अचिन्त्य योगशक्ति जिससे मैं असंख्य रूप प्रकट करता हूँ; आश्रयः—आश्रय रूप।

जब कोई योगी किसी विशेष विधि से अपने मन को लगाकर कोई विशिष्ट रूप धारण करना चाहता है, तो वही रूप तुरन्त प्रकट होता है। ऐसी सिद्धि मेरी उस अचिन्त्य योगशक्ति के आश्रय में मन को लीन करने से सम्भव है, जिसके द्वारा मैं असंख्य रूप धारण करता हूँ।

तात्पर्य : यह सिद्धि *काम-रूप* कहलाती है, जिसके बल पर इच्छानुसार कोई भी रूप, यहाँ तक कि देवता का भी रूप धारण कर लिया जा सकता है। शुद्ध भक्तगण अपने मनों को कृष्ण की विशेष प्रकार की सेवा में लीन करते हैं और इस तरह धीरे धीरे सच्चिदानन्द जीवन के लिए दिव्य शरीर धारण करते हैं। इस प्रकार जो भी व्यक्ति कृष्ण-नाम के कीर्तन की विधि अपनाता है और मानव-जीवन के नियमित विधानों का अनुसरण करता है, वह भगवद्धाम में शाश्वत दिव्य शरीर को धारण करके *काम-रूप* की चरम सिद्धि प्राप्त कर सकता है।

परकायं विशन्सिद्ध आत्मानं तत्र भावयेत् ।

पिण्डं हित्वा विशेत्प्राणो वायुभूतः षडङ्घ्रिवत् ॥ २३॥

शब्दार्थ

पर—दूसरे के; कायम्—शरीर में; विशन्—प्रवेश करने की इच्छा करते हुए; सिद्धः—योगाभ्यास में निपुण; आत्मानम्—स्वयं; तत्र—उस शरीर में; भावयेत्—कल्पना करता है; पिण्डम्—अपने ही स्थूल शरीर को; हित्वा—त्याग कर; विशेत्—प्रवेश करे; प्राणः—सूक्ष्म शरीर में; वायु-भूतः—वायु जैसा बन कर; षट्-अङ्घ्रि-वत्—भौंरें की तरह जो एक फूल से दूसरे फूल पर मँडराता है।

जब कोई पूर्ण योगी किसी अन्य के शरीर में प्रवेश करना चाहता है, तो उसे चाहिए कि अन्य के शरीर में अपना ध्यान करे और तब अपना निजी स्थूल शरीर त्याग कर, वायु के मार्गों से होकर अन्य के शरीर में उसी तरह प्रवेश करे जिस तरह भौंरा उड़ कर एक फूल छोड़ कर दूसरे पर चला जाता है।

तात्पर्य : जब नथुनों तथा मुँह से वायु शरीर के भीतर खींची जाती है, तो योगी के सूक्ष्म शरीर की प्राण-वायु बाह्य वायु के रास्तों से होकर यात्रा करती है और दूसरे पुरुष के शरीर में आसानी से प्रवेश करती है, जिस तरह भौंरा एक फूल से उड़ कर दूसरे फूल पर चला जाता है। किसी वीर पुरुष या सुन्दर स्त्री की प्रशंसा करके यदि मनुष्य उनके अद्वितीय शरीर के भीतर जीवन का अनुभव करना चाहे तो ऐसा सुयोग *परकाय प्रवेशनम्* सिद्धि द्वारा सम्भव है। शुद्ध भक्तगण भगवान् के आध्यात्मिक रूप में ध्यानमग्न होने से किसी भौतिक शरीर के प्रति आकृष्ट नहीं होते। इस प्रकार भक्तगण नित्य जीवन के स्तर पर तुष्ट रहते जाते हैं।

पाष्ण्र्यापीड्य गुदं प्राणं हृदुरःकण्ठमूर्धसु ।
आरोप्य ब्रह्मरन्ध्रेण ब्रह्म नीत्वोत्सृजेत्तनुम् ॥ २४॥

शब्दार्थ

पाष्ण्र्या—एड़ी से; आपीड्य—रोक कर; गुदम्—गुदा को; प्राणम्—जीव को ले जाने वाला प्राण; हृत्—हृदय से; उरः—वक्षस्थल पर; कण्ठ—गले तक; मूर्धसु—तथा सिर पर; आरोप्य—रख कर; ब्रह्म-रन्ध्रेण—सरि के ऊपर आध्यात्मिक स्थान द्वारा; ब्रह्म—आध्यात्मिक जगत या निर्विशेष ब्रह्म तक; नीत्वा—ले जाकर; उत्सृजेत्—त्याग दे; तनुम्—शरीर।

जिस योगी ने *स्वच्छन्द-मृत्यु* नामक योगशक्ति प्राप्त कर ली होती है, वह अपनी गुदा को पाँव की एड़ी से दबाता है और तब आत्मा को हृदय से उठाकर क्रमशः वक्षस्थल, गर्दन तथा अन्त में सिर तक उठाता है। तब ब्रह्म-रन्ध्र में स्थित योगी अपने शरीर को त्याग देता है और आत्मा को चुने हुए गन्तव्य तक ले जाता है।

तात्पर्य : *स्वच्छन्द-मृत्यु* नामक यह योग-ऐश्वर्य कुरुक्षेत्र युद्ध की समाप्ति पर भीष्मदेव द्वारा

अद्भुत रूप से प्रदर्शित हुआ था। श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार इस श्लोक में प्रयुक्त *ब्रह्म* शब्द *उपलक्षण* का उदाहरण है। यहाँ पर ब्रह्म योगी द्वारा चुने गये विशिष्ट गन्तव्य का—वैकुण्ठ का, निर्विशेष ब्रह्मज्योति का या योगी के मन को आकृष्ट करने वाले अन्य किसी स्थान का—सूचक है।

विहरिष्यन्सुराक्रीडे मत्स्थं सत्त्वं विभावयेत् ।
विमानेनोपतिष्ठन्ति सत्त्ववृत्तीः सुरस्त्रियः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

विहरिष्यन्—भोग करने की इच्छा से; सुर—देवताओं के; आक्रीडे—क्रीड़ा-स्थल में; मत्—मुझमें; स्थम्—स्थित; सत्त्वम्—सतोगुण; विभावयेत्—ध्यान करे; विमानेन—वायुयान या विमान के द्वारा; उपतिष्ठन्ति—प्राप्त होते हैं; सत्त्व—सतोगुण में; वृत्तीः—प्रकट होकर; सुर—देवताओं की; स्त्रियः—स्त्रियाँ।

जो योगी देवताओं के क्रीड़ा-उद्यानों का भोग करना चाहता है उसे मुझमें स्थित शुद्ध सतोगुण का ध्यान करना चाहिए और तब सतोगुण से उत्पन्न अप्सराएँ विमानों में चढ़ कर उसके पास आयेंगी।

यथा सङ्कल्पयेद्बुद्ध्या यदा वा मत्परः पुमान् ।
मयि सत्ये मनो युञ्जंस्तथा तत्समुपाश्नुते ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

यथा—जिस साधनों से; सङ्कल्पयेत्—मन में संकल्प करे या निश्चित करे; बुद्ध्या—मन के द्वारा; यदा—जब; वा—अथवा; मत्-परः—मुझमें श्रद्धा रखते हुए; पुमान्—योगी; मयि—मुझमें; सत्ये—जिसकी इच्छा सच उतरती है; मनः—मन; युञ्जन्—युक्त करते हुए; तथा—उस साधन से; तत्—वही अभिप्राय; समुपाश्नुते—प्राप्त करता है।

जो योगी मुझमें अपने मन को लीन करके तथा यह जानते हुए कि मेरा अभिप्राय सदैव पूरा होता है, मुझमें श्रद्धा रखता है, वह सदैव उन्हीं साधनों से, जिनका पालन करने का उसने संकल्प ले रखा है, अपना मन्तव्य प्राप्त करेगा।

तात्पर्य : इस श्लोक में *यदा* शब्द सूचित करता है कि *यथा संकल्प संसिद्धि* नामक योगशक्ति से अपना उद्देश्य प्राप्त करेगा, भले ही वह अशुभ समय में उसका अभ्यास क्यों न करे। भगवान् कृष्ण *सत्य संकल्प* कहलाते हैं अर्थात् वे जिनकी इच्छा, संकल्प, उद्देश्य अथवा प्रण सदैव सच्चे उतरते हैं।

श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर इसका उल्लेख करते हैं कि भक्ति के अचूक साधन से, जिसे किसी भी समय या स्थान में सम्पन्न किया जा सकता है, मनुष्य को चाहिए कि भगवान् कृष्ण से अपने खोये हुए सम्बन्ध को पुनरुज्जीवित करे। भगवान् कृष्ण को प्राप्त करने के लिए उचित मार्गदर्शन कराने

वाली अनेक पुस्तकें हैं यथा श्रील जीव गोस्वामी कृत *संकल्प कल्पवृक्ष,* श्रील कृष्णदास कविराज कृत *श्री गोविन्द-लीलामृत,* श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कृत *श्रीकृष्णभावनामृत* तथा *संकल्प-कल्पद्रुम* एवं श्रील भक्तिविनोद ठाकुर कृत *श्री गौरांगस्मरणमंगल।* आधुनिक युग में श्रील प्रभुपाद ने हमें आध्यात्मिक साहित्य पर साठ बड़े-बड़े ग्रंथ दिये हैं, जो हमें भगवद्धाम वापस जाने में सहायक हो सकते हैं। हमारा *संकल्प* व्यावहारिक होना चाहिए, निरर्थक नहीं। हमें भगवद्धाम वापस जाकर जीवन की समस्याओं का वास्तविक हल खोजने का संकल्प करना चाहिए।

यो वै मद्भावमापन्न ईशितुर्वशितुः पुमान् ।
कुतश्चिन्न विहन्येत तस्य चाज्ञा यथा मम ॥ २७॥

शब्दार्थ

यः—जो (योगी); वै—निस्सन्देह; मत्—मुझसे; भावम्—स्वभाव; आपन्नः—प्राप्त किया गया; ईशितुः—परम शासक से; वशितुः—परम नियन्ता से; पुमान्—पुरुष (योगी); कुतश्चित्—किसी प्रकार से; न विहन्येत—विचलित नहीं हो सकता; तस्य—उसका; च—भी; आज्ञा—आदेश; यथा—जिस तरह; मम—मेरा।

जो व्यक्ति ठीक से मेरा ध्यान करता है, वह परम शासक तथा नियन्ता होने का मेरा स्वभाव प्राप्त कर लेता है। तब मेरे ही समान उसका आदेश किसी भी तरह से व्यर्थ नहीं जाता।

तात्पर्य : भगवान् के आदेश से ही सम्पूर्ण सृष्टि घूमती है। जैसाकि *भगवद्गीता* (९.१०) में कहा गया है—

मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्।

हेतुनानेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते॥

''हे कुन्ती-पुत्र! यह भौतिक प्रकृति मेरी अध्यक्षता में कार्य करती है, जिससे सारे चर तथा अचर प्राणी उत्पन्न होते हैं। उसके शासन में यह जगत बारम्बार सृजित और विनष्ट होता रहता है।'' इसी तरह श्री चैतन्य महाप्रभु ने आदेश दिया है कि सारे विश्व के लोग कृष्णभावनामृत को ग्रहण करें। भगवान् के निष्ठावान भक्तों को चाहिए कि महाप्रभु के आदेश को विश्व-भर में दुहरायें। इस तरह वे ऐसे आदेश देने के भगवान् के योग-ऐश्वर्य में सहभागी हो सकते हैं जिनका कभी निराकरण नहीं हो सकता।

मद्भक्त्या शुद्धसत्त्वस्य योगिनो धारणाविदः ।
तस्य त्रैकालिकी बुद्धिर्जन्ममृत्यूपबृंहिता ॥ २८॥

शब्दार्थ

मत्-भक्त्या—मेरे प्रति भक्ति से; शुद्ध-सत्त्वस्य—जिसका जीवन शुद्ध हो जाता है उसका; योगिनः—योगी का; धारणा-विदः—ध्यान-विधि को जानने वाला; तस्य—उसका; त्रै-कालिकी—काल की तीनों अवस्थाओं, भूत, वर्तमान तथा भविष्य में कार्य करते हुए; बुद्धिः—बुद्धि; जन्म-मृत्यु—जन्म तथा मृत्यु; उपबृंहिता—समेत।

जिस योगी ने मेरी भक्ति द्वारा अपने जीवन को शुद्ध कर लिया है और जो इस तरह ध्यान की विधि को भलीभाँति जानता है, वह भूत, वर्तमान तथा भविष्य का ज्ञान प्राप्त करता है। अतः वह अपने तथा अन्यों के जन्म तथा मृत्यु को देख सकता है।

तात्पर्य : आठ प्रधान तथा दस गौण योग-सिद्धियों का वर्णन कर चुकने के बाद, भगवान् अब पाँच निकृष्ट शक्तियों को बतलाते हैं।

अग्न्यादिभिर्न हन्येत मुनेर्योगमयं वपुः ।
मद्योगशान्तचित्तस्य यादसामुदकं यथा ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

अग्नि—आग; आदिभिः—इत्यादि (सूर्य, जल, विष इत्यादि) के द्वारा; न—नहीं; हन्येत—चोट पहुँचाया जा सकता है; मुनेः—चतुर योगी के; योग-मयम्—योग-विज्ञान में पूरी तरह अनुशीलित; वपुः—शरीर; मत्-योग—मेरी भक्ति से; शान्त—शान्त किया गया; चित्तस्य—चित्त वाले का; यादसाम्—जलचरों के; उदकम्—जल; यथा—जिस तरह।

जिस तरह जलचरों के शरीरों को जल से चोट नहीं पहुँचती, उसी प्रकार जिस योगी की चेतना मेरी भक्ति से शान्त हुई रहती है और जो योग-विज्ञान में पूर्णतया विकसित होता है, उसका शरीर अग्नि, सूर्य, जल, विष इत्यादि से क्षतिग्रस्त नहीं किया जा सकता।

तात्पर्य : समुद्र में रहने वाले जीवों को जल से कभी चोट नहीं पहुँचती, प्रत्युत जल के भीतर वे जीवन का आनन्द लेते हैं। इसी तरह, जो व्यक्ति योग-युक्तियों में दक्ष होता है उसके लिए हथियारों, अग्नि, विष इत्यादि के आक्रमणों से अपने को बचा लेना एक खिलवाड़ होता है। प्रह्लाद महाराज पर उसके पिता ने इन सभी विधियों से वार किया था, किन्तु पूर्णतया कृष्णभावनाभावित होने के कारण उन्हें चोट नहीं पहुँची। भगवद्भक्तगण भगवान् कृष्ण की कृपा पर पूरी तरह निर्भर रहते हैं क्योंकि भगवान् योगेश्वर हैं और उनमें अनन्त योगशक्ति रहती है। चूँकि भक्तगण भगवान् कृष्ण से जुड़े होते हैं, अतएव उनमें अपने प्रभु, अपने रक्षक भगवान् में पहले से उपस्थित शक्तियों को अलग से विकसित करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

यदि कोई व्यक्ति मध्य समुद्र में गिर जाय तो वह तुरन्त डूब जाता है, किन्तु उन्हीं तरंगों में मछली

क्रीड़ा करते हुए सुख का अनुभव करती है। इसी प्रकार भवसागर में पतित बद्धजीव अपने पापों में डूबते रहते हैं जबकि भक्तगण इस जगत को भगवान् की शक्ति मानते हुए भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति में लग कर आनन्दमय लीलाओं का भोग करते हैं।

मद्विभूतीरभिध्यायन्श्रीवत्सास्त्रविभूषिताः ।
ध्वजातपत्रव्यजनैः स भवेदपराजितः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

मत्—मेरे; विभूतीः—ऐश्वर्यमय अवतारों से; अभिध्यायन्—ध्यान करते हुए; श्रीवत्स—भगवान् के श्रीवत्स ऐश्वर्य समेत; अस्त्र—हथियार; विभूषिताः—अलंकृत; ध्वज—झंडों से; आतपत्र—छाते से; व्यजनैः—तथा नाना प्रकार के पंखों से; सः—वह, भक्त-योगी; भवेत्—बन जाता है; अपराजितः—अन्यों द्वारा न जीता जा सकने वाला।

मेरा भक्त मेरे ऐश्वर्यमय अवतारों का ध्यान करके अपराजेय बन जाता है। मेरे ये अवतार श्रीवत्स तथा विविध हथियारों से अलंकृत और ध्वजों, आलंकारिक छातों तथा पंखों जैसे राजसी साज-सामान से युक्त होते हैं।

तात्पर्य : भगवान् के ऐश्वर्यमय अवतारों के पास राजसी साज-सामान होने से उनकी सर्वशक्तिमत्ता सूचित होती है और भक्तगण भगवान् के शक्तिशाली राजसी साज-सामान से युक्त अवतारों का ध्यान करके अपराजेय बन जाते हैं। जैसाकि बिल्वमंगल ठाकुर ने *कृष्णकर्णामृत* (श्लोक १०७) में कहा है—

भक्तिस्त्वयि स्थिरता भगवन् यदि स्याद्
दैवेन नः फलति दिव्यकिशोरमूर्तिः ।
मुक्तिः स्वयं मुकुलिताञ्जलिः सेवतेऽस्मान्
धर्मार्थकामगतयः समयप्रतीक्षाः ॥

"हे प्रभु! यदि हम अपने में आपके लिए अविचल भक्ति उत्पन्न कर लें, तो आपका दिव्य किशोर रूप स्वतः हमारे समक्ष प्रकट हो जाता है। इस तरह मुक्ति स्वयं हाथ जोड़े हमारी सेवा करने के लिए प्रस्तुत रहती है और धर्म, अर्थ तथा काम हमारी सेवा करने के लिए धैर्यपूर्वक करते हैं।"

उपासकस्य मामेवं योगधारणया मुनेः ।
सिद्धयः पूर्वकथिता उपतिष्ठन्त्यशेषतः ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

उपासकस्य—पूजा करने वाले का; माम्—मुझको; एवम्—इस प्रकार; योग-धारणया—यौगिक ध्यान द्वारा; मुनेः—विद्वान पुरुष का; सिद्धयः—सिद्धियाँ; पूर्व—पहले; कथिताः—कही हुई; उपतिष्ठन्ति—पास पहुँचती हैं; अशेषतः—सभी प्रकार से।

जो विद्वान भक्त योग-ध्यान द्वारा मेरी पूजा करता है, वह निश्चय ही सभी तरह से उन योग-सिद्धियों को प्राप्त करता है जिनका वर्णन मैंने अभी किया है।

तात्पर्य : *योगधारणया* शब्द बताता है कि प्रत्येक भक्त उस सिद्धि को पाता है, जिसके योग्य वह होता है। इस तरह भगवान् *योग-सिद्धि* विषयक अपना विवेचन समाप्त करते हैं।

जितेन्द्रियस्य दान्तस्य जितश्वासात्मनो मुनेः ।
मद्धारणां धारयतः का सा सिद्धिः सुदुर्लभा ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

जित-इन्द्रियस्य—इन्द्रियों को जीत लेने वाले का; दान्तस्य—अनुशासित तथा आत्मसंयमित का; जित-श्वास—जिसने श्वास पर विजय पा ली है; आत्मनः—तथा जिसने मन को जीत लिया है; मुनेः—ऐसे मुनि का; मत्—मुझमें; धारणाम्—ध्यान; धारयतः—करने वाला; का—क्या है; सा—वह; सिद्धिः—सिद्धि; सु-दुर्लभा—जिसको प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है।

जिस मुनि ने अपनी इन्द्रियों, श्वास तथा मन को जीत लिया है, जो आत्मसंयमी है और सदा मेरे ध्यान में लीन रहता है, उसके लिए कौन-सी योग-सिद्धि प्राप्त करना कठिन है?

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी की टीका इस प्रकार है : ''यहाँ पर कृष्ण यह कहते हैं कि अनेक कठिन विधियों का अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि उपर्युक्त में से किसी एक भी विधि को पूरी तरह सम्पन्न करने से, मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में कर सकता है, भगवान् में लीन हो सकता है और इस तरह समस्त योग-सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है।

श्रील जीव गोस्वामी लिखते हैं कि मनुष्य को भगवान् के दिव्य स्वरूप का ध्यान करना चाहिए जो किसी भौतिक उपाधि से मुक्त है। योग-पद्धति में प्रगति करने का यही सार है। इस तरह मनुष्य भगवान् के निजी शरीर से सारी सिद्धियाँ सरलता से प्राप्त कर सकता है।

अन्तरायान्वदन्त्येता युञ्जतो योगमुत्तमम् ।
मया सम्पद्यमानस्य कालक्षपणहेतवः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

अन्तरायान्—अवरोध; वदन्ति—कहते हैं; एताः—ये सिद्धियाँ; युञ्जतः—लगने वाले के; योगम्—ब्रह्म से संयोग; उत्तमम्—परम अवस्था; मया—मेरे साथ; सम्पद्यमानस्य—पूरी तरह ऐश्वर्यवान बनने वाले के; काल—समय का; क्षपण—अवरोध का, बर्बादी; हेतवः—कारण।

भक्ति के विद्वान पंडितों का कहना है कि योग-सिद्धियाँ, जिनका मैंने उल्लेख किया है,

वास्तव में उस परम योग का अभ्यास करने वाले व्यक्ति के लिए अवरोधक तथा समय का अपव्यय हैं जिसके द्वारा वह मुझसे सीधे समस्त जीवन-सिद्धियाँ प्राप्त करता है।

तात्पर्य : यह तो सामान्य अनुभव की बात है कि जो वस्तु समय का अपव्यय हो उसे त्याग देना चाहिए, अतएव मनुष्य को भगवान् से योग-सिद्धियों की याचना नहीं करनी चाहिए। निष्काम शुद्ध भक्त के लिए निर्विशेष मुक्ति तक जीवन की व्यर्थ बाधा लगती है और भौतिक योग-सिद्धियों के विषय में क्या कहा जाय जो निर्विशेष मुक्ति से तुलनीय नहीं हैं। भले ही ऐसी योग-सिद्धियाँ अपरिपक्व तथा अननुभवी व्यक्ति के लिए आश्चर्यजनक हों, किन्तु जिस विद्वान ने भगवान् को समझ लिया है उसके लिए ये तनिक भी प्रभावशाली नहीं हैं। भगवान् कृष्ण को प्राप्त करने मात्र से मनुष्य योग-सिद्धियों के अनन्त सागर में निवास करता है अतएव अलग से योगसिद्धियों के पीछे अपना बहुमूल्य समय बर्बाद नहीं करना चाहिए।

जन्मौषधितपोमन्त्रैर्यावतीरिह सिद्धयः ।
योगेनाप्नोति ताः सर्वा नान्यैर्योगगतिं व्रजेत् ॥ ३४॥

शब्दार्थ

जन्म—जन्म; औषधि—जड़ी-बूटियों; तपः—तपस्या; मन्त्रैः—तथा मंत्रों से; यावतीः—जितने हैं; इह—इस जगत में; सिद्धयः—सिद्धियाँ; योगेन—मेरी भक्ति से; आप्नोति—प्राप्त करता है; ताः—वे; सर्वाः—सभी; न—नहीं; अन्यैः—अन्य विधियों से; योग-गतिम्—वास्तविक योग-सिद्धि; व्रजेत्—प्राप्त करता है।

अच्छे जन्म, औषधियों, तपस्याओं तथा मंत्रों से जो भी योग-सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं उन सबों को मेरी भक्ति करके प्राप्त किया जा सकता है। निस्सन्देह, कोई भी व्यक्ति अन्य किसी साधन से वास्तविक योग-सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता।

तात्पर्य : देवता रूप में जन्म लेने से मनुष्य को स्वतः अनेक योग-सिद्धियाँ प्राप्त हुई रहती हैं। सिद्धलोक में मात्र जन्म लेने से स्वतः आठ प्रमुख योग-सिद्धियाँ अर्जित हो जाती हैं। इसी तरह मछली के रूप में जन्म लेने से वह जल से अभेद्य हो जाती है, पक्षी रूप में जन्म लेने से उड़ने की योग-सिद्धि प्राप्त हो जाती है और भूतप्रेत के रूप में जन्म लेने से अलक्षित होने तथा परकाया-प्रवेश की सिद्धि प्राप्त होती है। पतञ्जलि मुनि बतलाते हैं कि योग-सिद्धियाँ जन्म, औषधि, तपस्या तथा मंत्रों द्वारा प्राप्त की जा सकती हैं। किन्तु भगवान् का कहना है कि ऐसी सिद्धियाँ अन्ततोगत्वा समय का अपव्यय हैं तथा वास्तविक योग-सिद्धि अर्थात् कृष्णभावनामृत प्राप्त करने में विघ्न स्वरूप हैं।

जो लोग भक्तियोग त्याग कर, कृष्ण के अतिरिक्त ध्यान की अन्य वस्तुओं के लिए मँडराते हैं, वे निश्चय ही अधिक बुद्धिमान नहीं हैं। जो अपने को योगी घोषित करते हैं किन्तु अपनी इन्द्रियों की तुष्टि में लगे रहते हैं, वे *कुयोगी* या *भोगी-योगी* हैं। ऐसे कुयोगी यह नहीं समझ पाते कि जिस तरह उनके पास लघु इन्द्रियाँ हैं उसी तरह परब्रह्म के पास सूक्ष्म इन्द्रियाँ हैं। वे यह भी नहीं समझ पाते कि योग वास्तव में भगवान् की चरम इन्द्रियों को तुष्ट करने के निमित्त है। इसलिए जो व्यक्ति योग-सिद्धियों के तथाकथित सुख के पीछे पड़ कर, भगवान् कृष्ण के चरणकमलों का परित्याग कर देते हैं उन्हें अपने प्रयासों से हतोत्साहित होना पड़ेगा। मनुष्य को केवल भगवान् का ध्यान करने से *योगगति* प्राप्त हो सकती है, जिसका अर्थ होता है भगवान् कृष्ण के लोक में रह कर आध्यात्मिक ऐश्वर्यों का भोग करना।

सर्वासामपि सिद्धीनां हेतुः पतिरहं प्रभुः ।
अहं योगस्य साङ्ख्यस्य धर्मस्य ब्रह्मवादिनाम् ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

सर्वासाम्—सभी से; अपि—निस्सन्देह; सिद्धीनाम्—सिद्धियों में से; हेतुः—कारण; पतिः—रक्षक; अहम्—मैं हूँ; प्रभुः—स्वामी; अहम्—मैं; योगस्य—मेरे शुद्ध ध्यान का; साङ्ख्यस्य—सांख्य ज्ञान का; धर्मस्य—निष्काम भाव से किये गये कर्म का; ब्रह्म-वादिनाम्—वैदिक शिक्षकों का।

हे उद्धव, मैं समस्त योग-सिद्धियों, योग-पद्धति, सांख्य ज्ञान, शुद्ध कर्म तथा विद्वान वैदिक शिक्षकों का कारण, रक्षक तथा स्वामी हूँ।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार, यहाँ पर *योग* शब्द भौतिक जीवन से मुक्ति का और *सांख्य* शब्द मोक्ष प्राप्त करने की विधि का सूचक है। इस तरह भगवान् कृष्ण न केवल भौतिक योग-सिद्धियों के अपितु सर्वोच्च मुक्त सिद्धियों के भी स्वामी हैं। पुण्यकर्म द्वारा सांख्य अर्थात् मोक्ष का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और भगवान् कृष्ण ऐसे कर्म के हेतु, रक्षक तथा स्वामी तो हैं ही, वे उन विद्वान शिक्षकों के भी स्वामी हैं, जो सामान्य लोगों को पवित्रता की शिक्षा देते हैं। हर जीव के लिए भगवान् कृष्ण अनेक प्रकार से ध्यान तथा पूजा के लक्ष्य हैं। भगवान् कृष्ण अपनी शक्तियों का विस्तार करके सर्वस्व बनते हैं और यही साधारण चिन्तन योग की चरम सिद्धि है, जो कृष्णभावनामृत कहलाती है।

अहमात्मान्तरो बाह्योऽनावृतः सर्वदेहिनाम् ।
यथा भूतानि भूतेषु बहिरन्तः स्वयं तथा ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; आत्मा—भगवान्; आन्तरः—परमात्मा के भीतर स्थित; बाह्यः—मेरे सर्वव्यापक रूप के बाहर स्थित; अनावृतः—खुला; सर्व-देहिनाम्—सारे जीवों के; यथा—जिस तरह; भूतानि—भौतिक तत्त्व; भूतेषु—जीवों में; बहिः—बाहर से; अन्तः—भीतर से; स्वयम्—स्वयं; तथा—उसी तरह से।

जिस तरह समस्त भौतिक शरीरों के भीतर तथा बाहर एक जैसे भौतिक तत्त्व उपस्थित रहते हैं, उसी तरह मैं किसी अन्य वस्तु से आच्छादित नहीं किया जा सकता। मैं हर वस्तु के भीतर परमात्मा रूप में और हर वस्तु के बाहर अपने सर्वव्यापक रूप में उपस्थित रहता हूँ।

तात्पर्य : समस्त योगियों तथा दार्शनिकों के ध्यान का सम्पूर्ण आधार भगवान् कृष्ण हैं और यहाँ पर भगवान् अपने चरम पद का स्पष्टीकरण कर रहे हैं। चूँकि भगवान् हर वस्तु के भीतर रहते हैं इसलिए मनुष्य यह सोच सकता है कि भगवान् तो खण्डों में विभाजित हैं। किन्तु *अनावृत* शब्द सूचित करता है कि परब्रह्म या भगवान् के चरम अस्तित्व में न तो किसी तरह का व्यवधान होता है, न ही अतिलंघन हो सकता है। जिस तरह हर स्थान पर रहने वाले भौतिक तत्त्वों के अन्तः तथा बाह्य अस्तित्व में कोई विलगाव नहीं होता, उसी तरह भगवान् सर्वव्यापी हैं और हर वस्तु की चरम सिद्धि हैं।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के ग्यारहवें स्कन्ध के ''भगवान् कृष्ण द्वारा योग-सिद्धियों का वर्णन'' नामक पन्द्रहवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।